मिल्लत की कामयाबी का वाहिद रास्ता

खुर्रम मुराद

अनुवाद :

डॉ. रफ़ीक़ अहमद

किताब का मूल नाम :
नाम किताब (अनुवादित) : मिल्लत की कामयाबी का वाहिद रास्ता
लेखक : डा० खुर्रम मुराद
हिन्दी अनुवाद : डा० रफ़ीक़ अहमद
हिन्दी एडीशन : 2010
प्रतियाँ : 1000
पृष्ठ : 18
कम्पोज़िंग : शाहनवाज़
प्रिन्टर्स : रहमान प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स आबूनगर–फ़तेहपुर
क़ीमत : दुआये ख़ैर

मिनजानिब

ख़िज़रा लाइब्रेरी

(इस्लामी किताबों का मर्कज़)

सय्यदवाड़ा, फ़तेहपुर

ज़ेरे निगरानी : जमाअते इस्लामी हिन्द,फ़तेहपुर

بسم اللہ الرحمن الرحیم

क़ुरआन करीम वह किताब है जिसके बारे में नबी करीम सल्ल० ने फ़रमाया कि इस किताब के ज़रीये अल्लाह तआला बहुत सी क़ौमों को ऊपर उठाता है, और बहुत सी क़ौमों को नीचे गिरा देता है। ख़ुद क़ुरआन का बड़ा हिस्सा क़ौमों के उत्थान और पतन की दास्तान पर आधारित है। शाह वली उल्लाह रह० ने क़ुरआनी इल्म को पांच हिस्सों में विभक्त किया है। इनमें से एक हिस्से को ''तज़कीर बिल अय्यामुल्लाह'' यानी ''अल्लाह के दिनों के ज़रीये याददिहानी'' के नाम से मौसूम किया है।

क़ौमों के उत्थान और पतन की दास्तान मानव इतिहास के पन्नों पर इस तरह अंकित है कि इन्सान उस पर ग़ौरोफ़िक्र किये बग़ैर नहीं रह सकता। जमाअतें और गिरोहें गुमनामी के ग़ोशे से उठती हैं और दुनिया के ऊपर छा जाती हैं, संस्कृति एवं सभ्यता की बुलन्दी पर पहुंचती हैं और इसके बाद कुछ सो जाती हैं, और कुछ ज़िल्लत और अपमान में घिर जाती हैं, और कुछ की फ़सल तो उस तरह कट जाती है कि उनका नाम इतिहास के पन्नों में एक दुखद घटना बन कर रह जाती है –

(فَجَعَلْنٰهُمْ اَحَادِيْثَ وَ مَزَّقْنٰهُمْ كُلَّ مُمَزَّقٍ)

आख़िरकार हमने उन्हें बेहकीकत बनाकर रख दिया और उन्हें बिल्कुल तितर–बितर कर डाला, तहज़ीब व तमद्दुन (संस्कृति एवं सभ्यता) की सारी बुलन्दियों के बावजूद, कुछ का ख़ात्मा इस तरह होता है। मानो कि आग बुझ गयी हो, या खेती कट चुकी हो –

حَتّٰى جَعَلْنٰهُمْ حَصِيْدًا خَامِدِيْنَ) (الانبیا۲۱-۱۵)

यहां तक कि हमने उनको खलियान कर दिया, ज़िन्दगी की एक चिंगारी तक उनमें बाक़ी न रही। इन्सान सोचता है कि ऐसा क्यों है? उसकी फ़ितरत में जिज्ञासा और जुस्तजू का तत्व है वह जानना चाहता है कि इन्सानी जमाअतें और समुदाये तरक़्क़ी की मन्ज़िले कैसे तय करती हैं और

ऐसा कैसे हो जाता है कि जब वह बुलन्दी की अन्तिम सीमा पर पहुंच जाती हैं तो उसके बाद पतन की ओर चल पड़ती हैं, और आख़िरकार इसका शिकार हो जाती हैं।

हमारी आदत यह है कि हम चीज़ों को समझने के लिये ऐसी मिसालें लाते हैं जो हमारे लिये ज़्यादा समझने योग्य हों। जब इन्सान ने क़ौमों के उत्थान और पतन पर ग़ौर किया तो उसने सोचा कि क़ौमों की ज़िन्दगी का अमल भी शायद उसी तरह है, जिस तरह एक शख़्स की ज़िन्दगी होती है जिस को वह जानता और पहचानता है। इन्सान पैदा होता, बचपन की सीमाओं में प्रवेश करता है, जवानी के दौर में क़दम रखता है, फिर उस पर बुढ़ापा छा जाता है और आख़िरकार वह मौत का शिकार हो जाता है। इन्सान ने सोचा शायद क़ौमों की ज़िन्दगी भी इसी तरह एक हमातयाती अमल है और उसको भी बिल्कुल इन्सानी ज़िन्दगी की तरह बचपन, जवानी, बुढापा और मौत की मन्ज़िलों से गुज़रना होता है। कभी इन्सान शाम और सुबह की तरफ़ नज़र दौड़ाता है क्योंकि इतिहास का ज़माने से बड़ा गहरा सम्बंध है लिहाज़ा उसने यह बताया कि क़ौमों की ज़िन्दगी एक चक्र की तरह है। जिस तरह सुबह के बाद शाम और फिर सुबह होती है, इसी तरह क़ौमों की ज़िन्दगी में भी यादगार लम्हे आते रहते हैं।

कुछ लोगों ने अन्दाज़ा लगाया कि इन सारे चक्रों के नतीजे में मानवता कुल मिलाकर तरक़्क़ी और बुलन्दी की तरफ़ बढ़ रही है, ख़ासतौर से पिछली तीन–चार सदियों में जब योरूप ने साइन्स और टेकनालाजी की ओर तेज़ दौड़ लगाई, और प्रकृति की रहस्यों से पर्दा उठाया और क़ुदरत की ताक़तों पर क़ाबू पा लिया तो यूरोप ने देखा कि अब हम बग़ैर ख़ुदाई हिदायत (ईश्वरीय मार्गदर्शन) के प्रकृति के ऊपर क़ाबू पाते चले जा रहे हैं। अब यह नज़रिया और विचारधारा पेश कर दिया गया कि इन्सानीयत कुल मिलाकर तरक़्क़ी की तरफ़ जा रही है बल्कि इतिहास

के अन्दर तरक़्क़ी एक लाज़िमी बात है जो कि जो ज़ाहिर होकर रहेगा। अगर क़ौमों पर दौर आते हैं तो यह उनके अपने मामले हैं, मानवता कुल मिलाकर तरक़्क़ी कर रही है।

इस नज़रिये और विचारधारा को अभी कुछ ही वर्ष गुज़रे थे कि प्रथम विश्व युद्ध में इन्सानियत को 80 लाख लाशों और ढाई करोड़ विकलांग और अपाहिज इन्सानों का तोहफ़ा मिला। यूं तरक़्क़ी के यह सारे स्वप्न चकना चूर हो गये और यूरोप को यह सोचना पड़ा कि इन्सान कितनी ही तरक़्क़ी क्यों न कर ले, उसकी अक़्ल कितनी ही आगे न बढ़ जाये क़ुदरत की ताक़तों और फ़ितरत के राज़ों और रहस्यों पर उसको चाहे कितना ही कन्ट्रोल हासिल हो जाये लेकिन ज़रूरी नहीं कि इन्सानियत तरक़्क़ी की तरफ़ जा रही हो।

क़ौमों और इन्सानियत की तरक़्क़ी और पतन के बारे में पाये जाने वाले इन नज़रियात और विचार धाराओं के जायज़े की ज़रूरत इसलिये थी कि उसकी रोशनी में क़ुरआन ने इस हवाले से जो महान और फ़िक्र अंगेज़ शिक्षायें पेश की हैं उनको समझना आसान हो जाये और उनके महत्व व क़ीमत का सही अन्दाज़ा लगाया जा सके।

अगर इन सारे विचारधाराओं पर ग़ौर किया जाये तो इसमें तीन चीज़े साफ़ नज़र आयेंगी। इनमें से एक जबरीयत (विवशता) है। इससे तात्पर्य यह है कि इन्सान मजबूर है वह बचपन, जवानी, बुढ़ापे के मर्हलों से गुज़र कर आख़िरकार मौत की गोद में चला जायेगा। इसमें उसके अमल और एख़लाक़ का कोई दख़ल नहीं है वह मजबूरन मौत की तरफ़ अपना सफ़र तय करता है।

अगर यह कहा जाये कि दुनिया में लाज़मी तौर पर तरक़्क़ी हो रही है। जबकि इन्सान मजबूर है तो इसका मतलब यह हुआ कि वह इस तरक़्क़ी के पीछे–पीछे चले। अगर हम कहें कि दुनिया के अन्दर सारी तरक़्क़ी

भौतिक शक्तियों और साइंस एवं टेक्नोलॉजी का नतीजा है तो यह भी वह चीज़ें हैं जो इन्सान को मजबूर करती हैं। विवशता और भौतिकता इन तमाम नज़रियों और विचार धाराओं का खुलासा है जो इन्सान ने दुनिया के बारे में क़ायम किये हैं।

इतिहास का महत्व

इतिहास के बारे में जुस्तजू सिर्फ़ फलसफियाना अहमीयत ही नहीं रखता बल्कि इसकी बड़ी ज़बरदस्त अमली अहमीयत भी है। इसलिये कि इन्सान की सारी मेहनत और दौड़–धूप का मक़सद यह नहीं है कि वह अपने ''क्यों'' का जवाब हासिल कर ले, बल्कि वह यह भी जानना चाहता है कि कोई उपाय और रास्ता ऐसा हो जो उसको पतन से बचा सके और तरक़्क़ी और बुलन्दी की तरफ ले जा सके।

वह संस्कृति और क़ौम जिसने मुसलमान होने की हैसीयत से हज़ार साल दुनिया पर हुकूमत किया, तरक़्क़ी व बलन्दी की मन्ज़िलें तय कीं,पिछले ढाई तीन सौ साल में धीरे–धीरे पतन का शिकार हो गयीं। एक–एक करके हमारे इलाक़े, हमारी हुकूमतें और हमारी क़ौमें यूरोप की ग़ुलामी में आती चली गयीं, इन्डोनेशिया गया, हिन्दुस्तान गया, अलजीरिया गया, मराकिश गया, नाइज़ीरिया गया। अगर हम पलट कर मुस्लिम दुनिया पर निगाह डालें तो मालूम होता है कि दूसरे विश्वयु) के बाद सऊदी अरब और अफग़ानिस्तान जैसे चन्द मुल्कों को छोड़कर कोई मुस्लिम देश आज़ाद नहीं था। आज भी आज़ादी के सारे दावों के बावजूद मुसलमान अपनी क़िस्मत बनाने के लिये आज़ाद नहीं हैं। एक छोटे से 30 लाख के इस्राईल का ख़न्जर उम्मते मुस्लिमा के सीने में घोंप दिया गया है और मुसलमान इसका मुक़ाबला करने की शक्ति नहीं रखते। हमारे पास लाखों करोड़ों डालर हैं, बहुत से मानवीय संसाधन हैं, दुनिया के बेहतरीन क्षेत्र हैं, हम दुनिया के महत्वपूर्ण राजमार्गों और रास्तों पर स्थापित हैं लेकिन इसके

बावजूद पूरी दुनिया में बेवज़न हैं। आख़िर ऐसा क्यों है? यह बात क़ाबिले ग़ौर है।

इतिहास का यह दास्तान हमारे लिये सिर्फ़ इल्मी गुफ्तगू और दार्शनिक कोशिश की हैसीयत नहीं रखती, बल्कि हमें इससे रुचि इसलिये भी होनी चाहिये कि हम यह जानने की कोशिश करें कि आया हमारे जो मसीहा पूरब से लेकर पश्चिम तक हमारी क़ौमों की रहनुमाई और मार्गदर्शन का कर्तव्य निभा रहे हैं, उनके हाथों क्या यह उम्मत तरक़्क़ी और बुलन्दी की मन्ज़िल की तरफ़ जा सकेगी। चुनांचे हमारे लिये इस सवाल की अहमीयत सिर्फ़ इल्मी और दार्शनिक ही नहीं है, बल्कि व्यावहारिक है। यह सवाल इस लिये भी ज़रूरी है कि हम ग़ौर करें और जाने कि क़ुरआन मजीद इसका क्या जवाब देता है, और उसके पास इन समस्याओं और मसलों का हल और मिल्लत की तरक़्क़ी और सफलता का रास्ता कौन सा है?

क़ुरआन का नुक्तयेनज़र (दृष्टिकोण) :–

अगर दावे का लफ्ज़ किताबे इलाही के लिये दुरुस्त हो तो मैं कहूंगा कि यह बड़ा ज़बरदस्त दावा है, जो क़ुरआन ने किया है कि क़ौमों का उत्थान व पतन, न भौतिक शक्तियों पर निर्भर है, न साइंस और टेक्नालाजी का उस में अमल–दखल है और न इल्मी तरक़्क़ियों पर ही इसका आधार है। यह पूरी तरह से एख़लाक़ी और सच्ची मान्यताओं पर निर्भर है। यह इन्सान के एख़लाक़ी आमाल का नतीजा है, जिसके नतीजे में क़ौमें उत्थान या पतन की तरफ़ जाती हैं। क़ुरआन मजीद ने बहुत स्पष्टता के साथ क़ौमों के उत्थान और पतन के जो कारक बयान किये हैं, वह एक शख़्स की ज़िन्दगी से बिल्कुल अलग है। एक व्यक्ति इस बात पर मजबूर है कि वह मौत की तरफ़ जाये, इसमें उसकी अख़लाक़ी ज़िन्दगी का कोई अमल दख़ल नहीं है। वह कोई नेक और भला होगा उसको भी मौत आयेगी

और कोई गुनहगार और पापी होगा तो उसको भी मौत का सामना करना होगा, लेकिन क़ौमों का मामला ऐसा नहीं है। क़ौमें लाज़मी तौर से मौत का शिकार नहीं होतीं। इनकी मौत इसलिये होती है कि वह अपने नफ़्स के ऊपर ज़ुल्म करती हैं, हालांकि एक व्यक्ति की मौत का सम्बंध उसके अपने नफ़्स पर ज़ुल्म के साथ नहीं होता। वह अपनी प्राकृतिक मौत मरता है। किसी क़ौम का मिट जाना या उसकी मौत हो जाना ज़रूरी अमल नहीं है जो उसे ज़रूर पेश आये। जिस तरह कोई व्यक्ति अपनी एखलाक़ी ज़िन्दगी में अच्छा बनना चाहे तो अच्छा बन सकता है और बुरा बनना चाहे तो बुरा बन सकता है। इसी तरह क़ौमें भी आज़ाद हैं कि वह अच्छाई के रास्ते पर चलना चाहें तो चल सकती हैं, तरक़्क़ी की राहे तय कर सकती हैं, एखलाक़ी और हक़ीक़ी मान्यतायें हासिल कर सकती हैं, और अगर बुराई की तरफ जाना चाहे अपने ऊपर ज़ुल्म करें दुनिया के अन्दर ज़ुल्म और फ़साद का दरवाज़ा खोलें तो वह तबाही और बर्बादी की तरफ जा सकती हैं, यह अमल ऐसा भी नहीं है कि लौटाया नहीं जा सकता। आदमी जवान होने के बाद बच्चा नहीं बन सकता, और बूढ़ा होने के बाद जवान नहीं हो सकता, लेकिन क़ौमें पतन का शिकार होने के बाद एक बार फिर बुलन्दी की तरफ़ आ सकती हैं और कामयाब हो सकती हैं।

अगर यह बात सही न होती तो अंबिया अलै0 गिरी हुई क़ौमों के सामने अपनी दावत लेकर खड़े न होते। वह जानते थे कि यह नुस्खा ऐसा है कि जिससे कोई क़ौम चाहे कितनी ही नीचे गिर चुकी हो अगर वह चाहे तो दुबारा तरक़्क़ी की तरफ़ जा सकती है। उन्होंने क़ौमों से इस बात का वादा किया, और ख़ुशख़बरी भी दी कि अगर तुमने यह दावत क़ुबूल कर ली तो अन्ततः बुलन्दी की तरफ़ चले जाओगे। ख़ुद नबी करीम सल्ल0 ने अरब किसी क़ौम की ज़िन्दगी में कभी कोई मुक़ाम ऐसा नहीं होता कि जहां मायूसी और निराशा हमेशा के लिये हो, जब भी कोई क़ौम चाहे अपने

आपको ऊपर के लोगों को यह खुशख़बरी सुनाई कि अगर तुमने मेरी दावत मान ली तो अरब और ग़ैर अरब दोनों के मालिक बन जाओगे। इसका आधार न साइंस पर था न टेक्नालाजी पर, न भौतिक सफलता पर और न आर्थिक सम्पन्नता के संसाधनों पर, बल्कि इसका तमाम तर आधार उस दावत के ऊपर था जिसे नबियों (अलै0) ने पेश किया।

अंग्रेजी में हम यूँ कह सकते हैं कि क़ौमों के पतन का अमल Irreversible नहीं कि जब चाहे उसको रोका और पलटा जा सकता है।

क़ुरआन ने इस बात को बिल्कुल अलग अंदाज़ से बयान किया है, और हर बार यही बात कही है कि इसका सम्बंध सिर्फ अमल और एखलाक़ से है।

فَهَلْ يُهْلَكُ اِلَّا الْقَوْمُ الْفٰسِقُوْنَ (اَلْاَحْقَافُ ٤٦_٣٥)

''क्या किसी को हलाक (विनष्ट) किया जाता है सिवाये उन क़ौमों के जो नाफ़रमानी का रास्ता इख्तियार करें''

وَتِلْكَ الْقُرٰى اَهْلَكْنٰهُمْ لَمَّا ظَلَمُوْا (اَلْكَهْفُ ١٨_٥٩)

''यह अज़ाब ग्रस्त बस्तियां तुम्हारे सामने मौजूद हैं। उन्होंने जब ज़ुल्म किया तो हमने उन्हें हलाक कर दिया'' और आगे फ़रमाया

ظَهَرَ الْفَسَادُ فِى الْبَرِّ وَالْبَحْرِ بِمَا كَسَبَتْ اَيْدِى النَّاسِ (اَلرُّوْمُ ٣٠_٤١)

''जल और थल में फ़साद फैल गया है लोगों के अपने हांथों की कमाई से'' इस फ़साद की लोगों के बुरे कर्मों के अलावा कोई और वजह न थी। क़ौमे आद का ज़िक्र इस तरह किया क़ौमे आद को देखो जब उन्होंने यह नारा बुलंद किया مَنْ اَشَدُّ مِنَّا قُوَّةً ''हमसे ताक़तवर कौन है'' वह इस घमण्ड में आ गये तो हमने उनको हलाक कर दिया। क़ौमे आद पर ख़ुदा की फ़टकार पड़ने और उन्हें दूर फेंक देने का सबब यह था –

وَتِلْكَ عَادٌ جَحَدُوْا بِاٰيٰتِ رَبِّهِمْ وَعَصَوْا رُسُلَهٗ وَاتَّبَعُوْا اَمْرَ كُلِّ جَبَّارٍ عَنِيْدٍ (هود ١١_٥٩)

यह हैं आद, अपने रब की आयतों से उन्होंने इन्कार किया उसके रसूलों की बात न मानी, और हर ज़ालिम और हक़ के दुश्मनों की पैरवी करते रहे''।

लिहाज़ा यह ठोस हक़ीक़त है कि जिस क़ौम को भी तबाही व बर्बादी का सामना हुआ। वह सिर्फ़ इसलिये आया कि उसने बग़ावत, नाफ़रमानी, अवहेलना और अत्याचार की राह अपनाई। क़ुरआन ने एक पूरी तहज़ीब की मिसाल दी है –

وَ لَالَابَ اللّٰهُ مَثَلاً قَلاْيَةً كَانَتْ آمِنَةً مُطْمَئِنَةً يَّاتِيُهَالالَاقُهَالاغَلاً مِنْ كُلِّ مَكَانٍ فَكَفَلَاتْ
بِاَنْعُمِ اللّٰهِ فَلَاَ اقَهَا اللّٰه لِبَا لَاالْجُوْعِ وَالْخَوْفِ بِمَا كَانُوايَ لانَعُوْن (النحل ١٩ـ١١٢)

''और अल्लाह एक बस्ती की मिसाल देता है। वह अमन और शान्ति की ज़िन्दगी गुज़ार रही थी और हर तरफ़ से उसको पर्याप्त रिज़्क पहुंच रहा था कि उसने अल्लाह की नेमतों का इन्कार और नाशुक्री शुरू कर दिया तब अल्लाह ने उसके बाशिन्दों को उनके कारनामों का यह मज़ा चखाया कि भूख और ख़ौफ़ की मुसीबतें उन पर छा गयीं।

एक ऐसी क़ौम जिस पर हर तरफ़ से आर्थिक तरक्की के दरवाज़े खुले हुये थे। रिज़्क बेपनाह आ रहा था लेकिन जब उसने अल्लाह की नेमतों की नाशुक्री की तो अल्लाह ने उनको भूख और ख़ौफ़ का लिबास पहना दिया। वजह यह नहीं थी कि वह तरक्क़ी की दौड़ में पीछे रह गये थे, टेक्नोलाजी में पीछे रह गये थे, उनके पास आर्थिक तरक्क़ी के पंचवर्षीय योजनायें नहीं थी बल्कि वह जो अमल करते थे (بِمَا كَانُو ايَ لَانَعُوْنَ)

उसकी बिना पर पतन का शिकार हुये। इसी वजह से अल्लाह ने ख़ौफ़, निराशा, मुसीबतों और परेशानियों को उन पर थोप दिया। अगर ज़ाहिरी तौर पर ज़मीन व आस्मान की आफ़तें और आपदायें किसी क़ौम को तबाह करती दिखाई दें तो क़ुरआन कहता है कि उसकी ज़िम्मेदारी उन प्राकृतिक आपदाओं पर नहीं है, बल्कि उस इन्सान के ऊपर है जिसने सरकशी, उद्दण्डता और नाफ़रमानी की राह इख़्तियार की। अल्लाह ने कहा कि किसी क़ौम पर हमने पत्थरों की बारिश बरसाई, किसी को आफ़त और

कड़क ने आ पकड़ा, किसी को हमने ज़मीन में धंसा दिया, किसी को हमने पानी में ग़र्क़ (जलमग्न) कर दिया, लेकिन यह मत ख्याल करना कि उनकी तबाही कड़क, तूफान या आपदाओं की वजह से हुई बल्कि अस्ल वजह यह थी : (العنکبوت ٢٩-٤٠) فَكُلًّا اَخَذْنَا بِذَنْبِهٖ आख़िरकार हर एक को हमने उसके गुनाह में पकड़ा। फिर फ़रमाया :

وَمَا كَانَ اللّٰهُ لِيَظْلِمَهُمْ وَلٰكِنْ كَانُوا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ(اَلْعَنْكَبُوْتُ ٢٠-٤٠)

''अल्लाह उन पर जुल्म करने वाला न था, मगर वह ख़ुद ही अपने ऊपर जुल्म कर रहे थे।

यह कुरआन का इतना खुला हुआ और स्पष्ट सबक़ है कि मुम्किन नहीं कि इन्सान कुरआन को पढ़े और इस ग़लत फ़हमी में मुब्तेला हो जाये कि क़ौमों की तरक़्क़ी भौतिक तत्वों पर आधारित हैं।

तरक्की व उरूज की बुनियादें :–

वह क्या चीज़ें हैं और कौन सी कद्रें हैं जो क़ौमों को तरक़्क़ी और बलन्दी की तरफ़ लेकर जाती हैं? कुरआन मजीद के अध्ययन से मैंने यह नतीजा निकाला है कि बुनियादी तौर पर यह चार क़द्रें (Values) हैं जिन पर क़ौमों की तरक्की निर्भर है। एक ईमान दूसरा तक़्वा (ईशभय), तीसरा सब्र और चौथा तौबा व इस्तिग़फ़ार ।

कुरआन करीम की बेशुमार आयतें, इन चार सिफ़तों के निर्णायक होने पर दलील हैं وَلَوْ اَنَّ اَهْلَ الْقُرٰى آمَنُوا وَاتَّقَوا لَفَتَحْنَا عَلَيْهِمْ بَرَكٰتٍ مِّنَ السَّمَاءِ وَالْاَرْضِ (اَلْاَعْرَاف ٧-٩٦) अगर बस्तियों के लोग ईमान लाते और तक़्वा का रास्ता इख़्तियार करते तो हम उनके ऊपर आसमानों से भी और ज़मीन से भी बर्कतों के दरवाज़े खोल देते'' ग़ौर करने की बात यह है कि यहां पर ईमान और तक़्वा के साथ हमारे सामने रूहानी और अख़्लाक़ी इनामात आते हैं, इसी तरह जन्नत और दोज़ख की बात आती है, यह बात भी स्पष्ट रूप से सामने आती है कि कुरआन ने दुनिया की

तरक्क़ी को भी ईमान और तक़्वा के साथ जोड़ दिया है कि अगर इन्सान ईमान और तक़्वा का रास्ता इख़्तियार करते तो हम उन पर आस्मान और ज़मीन से भी बर्कतें नाज़िल करते।

इसी तरह फ़रमाया गया है :

وَاِنْ تَ لَالِلُوا وَتَتَّقُوْا لَا يَ لَالُكُمْ كَيْلَاهُمْ شَيْئًا۔ (آل عِمْلَان ٣۔ ١٢٠)

इनकी कोई कोशिश और तुम्हारे खिलाफ़ कारगर नहीं हो सकती बशर्ते कि तुम सब्र से काम लो और अल्लाह से डर कर काम करते रहो'' मानों कि तुम्हारी तादाद चाहे कितनी ही कम क्यों न हो, लेकिन तुम्हारे पास सब्र और तक़्वा हो तो तुम्हारे दुश्मनों की कोई चाल, कोई साज़िश तुम्हे नुकसान नहीं पहुंचा सकती, यह आयत आज कल के ज़माने में ख़ासतौर पर काबिले ग़ौर है। हम अपने क़ौमी हादसे और मुसीबत के अस्बाब में इन साज़िशों को तलाश करते हैं, जो हमारे दुश्मन, हमारे ख़िलाफ़ करते हैं लेकिन क़ुरआन का बयान बिल्कुल साफ़ रहनुमाई करता है कि अगर तुम्हारे अन्दर सब्र और तक़्वा हो तो तुम्हारे दुश्मनों की कोई साजिश कोई मक्कारी, कोई उपाय तुम को नुकसान नहीं पहुंचा सकती। बनी इस्राईल जो मिस्र के अन्दर मग़लूब और अधीन थे, बहुत ही ज़िल्लत और मुसीबत की ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे। क़ुरआन ने उन्हें ''युस्तज़अफून'' कहा है यानी उनको कमज़ोर बना दिया गया था'' उन्हीं लोगों के बारे में फ़रमाया''

وَاَوْلَاثْنَا الْقَوْمَ الَّلِيْنَ كَانُوْا يُلْاتَ لَاعَفُوْنَ مَلَالِاق الْاَلْا لِ وَمَغَلَابِهَا الَّتِيْ لِاَكْنَا فِيْهَا ط وَتَمَّتْ كَلِمَتُ لَابِّكَ الْحُلَانىٰ عَلىٰ بَنِي اِلْلَائِيْلَ بِمَا لَالِلُوْا۔ (اَلْاَعْلَاف، ٧۔١٣٧)

''हमने उन लोगों को जो कमज़ोर बना कर रखे गये थे, इस सरज़मीन के पूरब और पश्चिम का उत्तराधिकारी बना दिया जिसे हमने बर्कतों से माला माल किया था। इस तरह बनी इस्राईल के हक़ में तेरे रब का वादा

ख़ैर पूरा हुआ क्यों कि उन्होंने सब्र से काम लिया था। गोया बनी इस्राईल के ऊपर जो अल्लाह तआला की नेअमतें मिली थीं, उसकी बुनियादी वजह यह थी कि उन्होंने सब्र की रविश इख़्तियार की। चौथी चीज़ इस्तिग़फ़ार यानी अल्लाह से माफ़ी चाहना है। हो सकता है कि इस बात पर ताज्जुब हो कि इस्तिग़फ़ार जिसके मायने गुनाहों की माफी मांगना है, इसका क़ौम की बुलन्दी और दुनयवी तरक्क़ी के साथ क्या सम्बंध है लेकिन क़ुरआन ने जहां भी इस्तिग़फ़ार की दावत दी है उसके साथ ही उसके भौतिक और दुनियवी तरक्क़ियों का वादा भी किया है।

हज़रत हूद अलै0 ने अपनी क़ौम को दावत दी कि अल्लाह के आगे इस्तिग़फ़ार करो और तौबा की रविश इख़्तियार करो

يُرْسِلِ السَّمَاءَ عَلَيْكُمْ مِدْرَارًا وَيَزِدْكُمْ قُوَّةً إِلَىٰ قُوَّتِكُمْ۔ (هواد ١١۔٥٢)

''वह तुम पर आसमान से दरवाज़े खोलेगा और तुम्हारी मौजूदा ताक़त को और बढ़ा देगा'' हज़रत नूह अलै0 ने रातो दिन अपनी क़ौम को पुकारा, खुले तौर पर भी और छुपे हुये भी दावत दी और उसके नतीजे से ख़बरदार किया :

فَقُلْتُ اسْتَغْفِرُوا رَبَّكُمْ إِنَّهُ كَانَ غَفَّارًا يُرْسِلِ السَّمَاءَ عَلَيْكُمْ مِدْرَارًا وَيُمْدِدْكُمْ بِأَمْوَالٍ وَبَنِينَ وَيَجْعَلْ لَكُمْ جَنَّاتٍ وَيَجْعَلْ لَكُمْ أَنْهَارًا (نواح ٧١:١٠۔١٢)

मैंने कहा अपने रब से माफी मांगो बेशक वह बड़ा माफ़ करने वाला है। वह तुम पर आसमान से खूब बारिशें बरसायेगा तुम्हे माल और औलाद से नवाज़ेगा, तुम्हारे लिये बाग़ पैदा करेगा, तुम्हारे लिये नहरें जारी कर देगा, क्या यह बात आश्चर्य में डालने वाली नहीं हैं कि इस्तिग़फ़ार का वह अमल जिससे हमारे ज़ेहन में यह तसव्वुर आता है कि हमारे गुनाह माफ़ होंगे और आख़िरत में हम जन्नत में दाख़िल होंगे, अल्लाह ने उसी अमले इस्तिग़फ़ार के साथ इस दुनिया की सारी माद्दी तरक्क़ियों का वादा फ़रमाया है।

अब सवाल यह पैदा होता है कि ईमान, तक़्वा, सब्र और

इस्तिग़फ़ार के अन्दर वह क्या राज़ है जिसकी वजह से क़ौमें तरक़्क़ी के राजमार्ग पर आगे बढ़ सकती हैं?

ईमान :

ईमान की हक़ीक़त और वास्तविकता क्या है? इस बात को समझने के लिये ये जान लें कि क़ुरआन की भाषा और शब्दावली में ईमान सिर्फ शब्दों के एक फार्मूले को ज़बान से अदा करने का नाम नहीं है। वह ऐसे गिरोहों का ज़िक्र करता है जो ज़बान से ईमान का इक़रार करते हैं, लेकिन उनके दिलों में ईमान दाखिल नहीं होता एक जगह फ़रमाया :

قَالُوا اٰمَنَّا بِاَفْوَاهِهِمْ وَلَمْ تُؤْمِنْ قُلُوْبُهُمْ ج (المائلاہ ٥:٤١)

''कुछ लोग ज़बान से कहते हैं कि हम ईमान लाये लेकिन उनके दिल ईमान नहीं लाये होते'' क़ुरआन कहता है कि ऐसे न कहो बल्कि यूं कहो :

وَلٰكِنْ قُوْلُوْا اَسْلَمْنَا وَلَمَّا يَدْخُلِ الْاِيْمَانُ فِىْ قُلُوْبِكُمْ (الحجلات ٤٩-١٤)

''इनसे कहो कि तुम ईमान नहीं लाये बल्कि यूं कहो कि हम आज्ञाकारी हो गये हैं'' ईमान अभी तुम्हारे दिलों में दाखिल नहीं हुआ''

ईमान के शाब्दिक अर्थ तो विश्वास, भरोसे, यक़ीन और अपने आप को समर्पण कर देने के हैं। दरअस्ल ईमान वह दोलत है जिसके बदले आदमी अपनी पूरी ज़िन्दगी का सौदा चुका देता है। यह वह ईमान है जो दिल व दिमाग़ यहां तक कि सारी ज़िन्दगी के ऊपर ग़ालिब होता है। ईमान का लाज़मी तक़ाज़ा यह है कि ज़िन्दगी का एक टार्गेट और एक मक़सद हो, जिस ज़ात के ऊपर हम ईमान लाये हैं, उसी की ख़ातिर पूरी ज़िन्दगी गुज़रे। यह पूरी ज़िन्दगी का सौदा है जिसमें आदमी अपनी पूरी ज़िन्दगी ख़ुदा के हाथ जन्नत के बदले बेच देता है।

ईमान का पहला स्तम्भ मुहब्बत है। अगर ग़ौर किया जाये तो पूरी ज़िन्दगी में खराबियां इसी मुहब्बत में खराबियों का नतीजा है। जब

मुहब्बत के पैमाने उलट–पलट हो जाते हैं, और वह मुहब्बतें ग़ालिब आ जाती हैं जिनको ग़ालिब नहीं आना चाहिये तो फिर क़ौमें पतन की तरफ जाना शुरू हो जाती हैं। मिसाल के तौर पर घर की मुहब्बत, दुनिया की मुहब्बत ख़ानदान की मुहब्बत, क़बीले की मुहब्बत, नस्ल व रंग की मुहब्बत और ज़बान की मुहब्बत वग़ैरा। क़ौमों के पास जब ऐसा मक़सद हो जो इन सारी मुहब्बतों के ऊपर ग़ालिब आ जाये तो फिर ये सारी मुहब्बतें मग़लूब (अधीन) हो जाती है। इसी लिये क़ुरआन ने फ़रमाया कि ईमान का पहला रुक्न (स्तम्भ) मुहब्बत है :

وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ (البقرہ ۲_۱۲۵)

ईमान रखने वाले अल्लाह को सबसे बढ़कर महबूब रखते हैं ''ईमान वाले रंग, नस्ल क़ौम, ज़बान और माल और दौलत से बढ़कर अल्लाह से मुहब्बत करते हैं।

ईमान का लाज़मी हिस्सा मेहनत और कोशिश भी है। इसलिये अगर ज़िन्दगी का कोई मक़सद है तो उसकी तलब, उसकी तरफ़ दौड़ना और उसको हासिल करने की कोशिश करना उसका लाज़मी तक़ाज़ा है। क़ुरआन ने भी यह कहा है :

اِنَّمَاالْمُؤْمِنُوْنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ثُمَّ لَمْ يَرْتَابُوْا وَجٰهَدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ وَاَنْفُسِهِمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۭ اُولٰۗىِٕكَ هُمُ الصّٰدِقُوْنَ۔(الحجرات ۴۹_۱۵)

हक़ीक़त में तो मोमिन वह हैं जो अल्लाह और उसके रसूल सल्ल0 पर ईमान लाये फिर उन्होंने शक न किया और अपनी जानों और मालों से अल्लाह की राह में जिहाद किया। वही सच्चे लोग हैं। ईमान से मायूसी की जड़ कट जाती है, इसलिये कि ईमान और मायूसी दोनों एक जगह जमा नहीं हो सकते। अल्लाह की रहमत और कृपा से वही मायूस होता है, जो काफ़िर और गुमराह हो चुका हो। खौफ़, मायूसी, बीमारी, परेशानी और चिन्ता यह सारी चीज़ें ईमान से ख़त्म हो जाती हैं। ईमान की विशेषता यह है

कि वह एक व्यक्ति के तवज्जों को एक बड़े मक़सद के ऊपर केन्द्रित कर देता है और तमाम क़ौमी मसलों को भी जोड़ कर एक लक्ष्य की तरफ़ लगा देता है। व्यक्ति और क़ौम के दिल में इस लक्ष्य की प्राप्ति और उसकी मुहब्बत हर चीज़ के ऊपर ग़ालिब होती है। फिर ख़ुद इन्सान उसके पीछा चलता है और उस पर अपनी पूरी ताक़त लगा देता है।

तक़वा :–

तक़वा का अर्थ अपने आपको बचाना है। अगर ग़ौर किया जाये तो उसके अन्दर कई अर्थ छुपे हुये हैं। हम अपने आपको किस चीज़ से बचाते हैं? हर उस चीज़ से जो हम को नुकसान पहुंचाने वाली हो। इसका मतलब यह हुआ कि तक़वा के लिये पहली शर्त यह है कि हम सही और ग़लत का, अच्छाई और बुराई का एक पैमाना मुक़र्रर कर लें। हम मान लें कि इस दुनिया में कुछ चीज़ें हमको नुकसान पहुंचाने वाली हैं और कुछ ऐसी हैं जो फ़ायदा पहुचाने वाली हैं, इसके बाद हम उस पर यक़ीन भी रखें और उसे व्यावहारिक जीवन में लागू भी करें क्यों कि उसकी पाबन्दी करने की क़ूव्वत व सलाहीयत भी हमारे अन्दर मौजूद है।

तक़वा ज़ाहिरी प्रदर्शन से ज़्यादा उस क़ूव्वत व ताक़त का नाम है, जिसके बल पर हम जिस चीज़ को ग़लत समझते हैं उससे बच जाये और जिसको सही समझते हो उसकी तरफ़ लपक कर जायें, क़ुरआन ने इसको बार–बार स्पष्ट किया है। क्योंकि तक़वा क़ूव्वत और सलाहीयत (क्षमता) का नाम है, इसलिये तक़वा का सही मुक़ाम इन्सान का दिल है। अहले ईमान तो वह हैं जो अल्लाह के शिआर (चिन्ह) का सम्मान करते हैं :

وَمَنْ يُّعَظِّمْ شَعَائِرَ اللّٰهِ فَاِنَّهَامِنْ تَقْوَى الْقُلُوْبِ۔ (الحج ٢٢۔٣٢)

''जो नबी अलै0 के सामने अपनी आवाज़ नीची रखते हैं :

اُولٰئِكَ الَّذِيْنَ امْتَحَنَ اللّٰهُ قُلُوْبَهُمْ لِلتَّقْوىٰ ط (الحجلات ٣:٤٩)

''उनके दिलों को अल्लाह ने तक़वा के लिये जांच लिया है।

सब्र :–

तीसरी चीज़ सब्र है। सब्र के मायने बेबसी और लाचारी के नहीं हैं। इसका अर्थ बेचारगी के भी नहीं हैं बल्कि सब्र हिम्मत, हौसला, ठहराव और इरादे की ताक़त का नाम है जिसके बल पर वह मक़सद और टार्गेट जिस पर ईमान हो, जो मक़सूद हो, जिसकी तरफ़ जाना है, जो सही और ग़लत का मापदंड है, इस पर मज़बूती और जमाव के साथ इन्सान अपने आपको बांध ले। सब्र का शाब्दिक अर्थ बांध लेने और जम जाने के हैं। उस राह में जो भी मुश्किल पेश आये उसको हिम्मत के साथ सहन करने का नाम सब्र है। सब्र के अन्दर जोश और तड़प, कोशिश और संघर्ष भी शामिल है। इसलिये कि सब्र उस वक़्त होता है जब आप अपने मक़सद को निश्चित करें, ग़लत और सही के मापदंड को निर्धारित कर लें और उसके ऊपर जम कर उसको हासिल करने के लिये संघर्ष करें। क़ौमों की ज़िन्दगी के अन्दर ज़ब्त जिसे अंग्रेज़ी में Cohesion कहते हैं सब्र के ज़रीये पैदा होता है। इसके नतीजे में वह बिखराव से सुरक्षित रहता है। क़ुरआन ने भी एक दूसरे के साथ जुड़ने के लिए सब्र का लफ्ज़ इस्तेमाल किया है :

وَاصْبِرْ نَفْسَكَ مَعَ الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ رَبَّهُمْ بِالْغَدٰوةِ وَالْعَشِيِّ يُرِيْدُوْنَ وَجْهَهٗ وَلَا تَعْدُ عَيْنٰكَ عَنْهُمْ۔ (الکھف ۱۸:۲۸)

''अपने आपको बांध लो सब्र के साथ उन लोगों के साथ में जो तुम्हारी तरह अल्लाह के तलबगार हैं और सुबह व शाम उसको पुकारते हैं और उनसे हरगिज़ निगाह न फेरो''।

इस्तिग़फ़ार :–

चौथी सिफ़त इस्तिग़फ़ार है। इतिस्तग़फ़ार सारे नबियों की दावत का बुनियादी हिस्सा है। अल्लाह ने फ़रमाया :

وَاللّٰهُ يَدْعُوْٓا اِلٰى الْجَنَّةِ وَالْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ۔ (البقرہ ۲:۲۲۱)

''अल्लाह अपने इज़्न से तुमको जन्नत और मग़फ़िरत की तरफ बुलाता है''

وَلَالِا عُوا اِلیٰ مَغۡفِرَۃٍمِنۡ لاَّبِّکُمۡ وَجَنَّۃٍ عَلاۡ لُاھَاالۡلاَمٰوَاتُ وَالۡاَلاۡ لاَ (العملان ۳:۱۳۲)

''दौड़ कर चलो उस राह पर जो तुम्हारे रब की बख़्शिश और उस जन्नत की तरफ़ जाती है जिसकी व्यापकता ज़मीन और आसमान जैसी है''

لَاَابِقُوۡ آاِلیٰ مَغۡفِرَۃٍمِنۡ لاَّبِّکُمۡ وَجَنَّۃٍ عَلاۡ لُاھَا کَعَلاۡ لِا الۡلاَّمَآءِ وَالۡاَلاۡ لِا لا (الحلایا ۵۷:۲۱)

''डरो और एक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करो अपने रब की मग़फ़िरत और जन्नत की तरफ़ जिसकी वुस्अत आसमान व ज़मीन जैसी है''।

इस्तिग़फ़ार की सिफ़त क्यों अहम है? दरअस्ल इस्तिगफ़ार की बुनियाद यह है कि हम न सिर्फ ग़लत और सही का एहसास और यक़ीन रखें, ग़लत से बचें और सही पर अमल करने की कोशिश करें बल्कि हर वक्त अपने पर नज़र रखें। अपना जायज़ा लेते रहें और जहां ग़लती का एहसास हो वहां ग़लती को स्वीकार भी करें, उसकी तलाफ़ी (छतिपूर्ति) भी करें और उसको दुबारा करने से बचने की भरपूर कोशिश करें।

इन्सानों और क़ौमों की ज़िन्दगी सही राह और बुलन्दी की तरफ़ उस वक़्त आती है, जब क़ौमें इहतिसाब (आत्म निरीक्षण) के अमल से गुज़रती हैं। हदीस में इस बात को स्पष्ट रूप से बयान किया गया है कि इहतिसाब व इस्तिग़फ़ार की रूह यह है कि आदमी गुनाहों को स्वीकार करे और यह बात समझे कि उसको अच्छे और बुरे नतीजे और बदलें पेश आने वाले हैं इसके बाद उस क़ूव्वत और स्रोत की तरफ़ पलटे जो उसको ग़ल्तियों से सुरक्षित रखने वाली है। मानों कि इस्तिग़फ़ार की सिफ़त भी व्यक्तिगत और सामूहिक ज़िन्दगी के अन्दर क़ौमों की तरक़्क़ी के लिये परम आवश्यक है।

अगर हम इन चारों चीज़ों पर ग़ौर करें तो महसूस होगा कि यह

किस क़द्र बुनियादी अहमीयत रखती है। अगर किसी क़ौम के सामने कोई स्पष्ट मक़सद न हो और उस मक़सद से इश्क उस पर ग़ालिब न हो (और अल्लाह की रिज़ा (प्रसन्नता) से बढ़कर कौन सा मक़सद हो सकता है) और जब तक उसके अन्दर इतनी सलाहीयत और क़ूव्वत न हो कि जिसको सही कहे उस पर अमल करे, और जिस को ग़लत समझे उससे बच जाये, जिसे सही समझा है, उसके साथ चिमटा रहे, उसके लिये कोशिश करे। और अपने इहतिसाब (आत्म परीक्षण) का अमल जारी रखे, जहां ग़लती हो उसको स्वीकार करे और फिर उस ग़लती के बुरे प्रभावों से बचने की कोशिश करें, इसके बग़ैर वह क़ौम बुलन्दी के रास्ते पर नहीं चल सकती। हक़ीक़त यह है कि इसी ईमान, तक़वा, सब्र और इस्तिग़फ़ार की बदौलत कोई क़ौम अज़मत, बुलन्दी और तरक्की पा सकती है।

कुरआन के दावे की हक़ीक़त :–

अगर इन चारों सिफ़ात (विशेषताओं) को सामने रखकर ग़ौर किया जाये तो आप इस बात से सहमत होंगे कि कुरआन ने तरक्की और बुलन्दी का जो आधार बताया है, वह बिल्कुल सही । यह सवाल पैदा हो सकता है कि आख़िर ऐसा क्यों है कि हम जो ईमान भी रखते हैं, तक़वा भी रखते हैं, इस्तिग़फ़ार भी करते हैं और सब्र भी करते हैं, कुरआन पर भी हमारा ईमान है लेकिन इसके बावजूद हम दुनिया के अन्दर मग़लूब (अधीन) और दूसरों का ग़लबा है।

इसका सीधा सादा जवाब यह है कि ईमान अपने आप में एक ताक़त है, और क़ुदरत के तराज़ू में वज़न ईमान ही का हैं इसके यहां निफ़ाक़ (दिखावा, पाखण्ड) का कोई वज़न नहीं है। यह ईमान अगर बातिल (असत्य) के ऊपर है जैसा कि कुरआन ने इस्तिलाह (Term) इस्तेमाल की है **امنو ابالبالال** मानों कि बातिल (असत्य) पर भी ईमान हो सकता है, तो

बातिल पर ईमान हक़ के साथ निफ़ाक़ पर हमेशा ग़ालिब आयेगा। इसलिये ईमान से जो क़ूव्वत पैदा होती है चाहे बातिल के लिये ही हो, वह दुनिया में आगे बढ़ेगी। निफ़ाक़ और तज़ाद (फ़िक्र और अमल में अन्तर) के साथ आदमी कमज़ोर होता है। और अगर निफ़ाक़ और तज़ाद अल्लाह तआला के साथ हों तो इन्सान और ज़्यादा प्रकोप का शिकार होगा।

दुनिया के अन्दर अस्ल चीज़ ईमान है। इस वक़्त जो क़ौमें दुनिया के अन्दर ग़ालिब हैं, उनके उद्देश्य और लक्ष्य अगर्च ग़लत हैं, लेकिन वह उनके ऊपर ईमान और यक़ीन रखती हैं। उन्होंने अपने लिये जो ग़लत और सही का पैमाना बना रखा है, हम उससे सहमत हों या न हों वह उसकी पैरवी करती हैं, उसके साथ मुनाफ़क़त (दिखावा) नहीं करती हैं। उनके अन्दर एहतिसाब (आत्म निरीक्षण) का अमल मौजूद हैं, और जो उनके मक़ासिद हैं उनके पीछे वह चलती हैं।

लोग अमरीक़ा की मिसाल देते हैं, कि अमरीक़ा तरक़्क़ी के राजमार्ग पर कैसे पहुंचा। अमरीका की तारीख़ पढ़ने वाले जानते हैं कि जिन लोगों ने इस देश को इस मुक़ाम तक पहुंचाया है उन्होंने वर्षो बड़े संघर्ष, लगन और सब्र के साथ काम करके पूरे संसाधनों पर नियंत्रण किया है। हम लोग सोचते हैं कि यूरोप ने पूरी दुनिया के अन्दर जो ग़लबा (अधिकार) हासिल किया है वह उनके साइंस और टेक्नालाजी का नतीजा है। लेकिन अगर यूरोप के इतिहास को पढ़ा जाये तो यह बात सामने आती है कि जिस जज़्बे ने योरूप की क़ौमों को यूरोप से निकाल कर दुनिया पर नियन्त्रण की राह पर डाला वह वहशियों (असभ्य लोगों को) को तरक़्क़ी देने और मुहज़्ज़ब (सभ्य) बनाने का जज़्बा था। यह मक़सद था जिसका इश्क उन्हें दुनिया के कोने– कोने तक ले गया। जो कोई भी ग्यारहवीं सदी की सलीबी जंगों से लेकर अट्ठारवीं सदी तक के यूरोप की तारीख़ पढ़ेगा उस पर यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनका अस्ल मक़सद यह था कि हम दुनिया को

सभ्यता से कैसे परिचित करायें।

इस्लाम की मिसाल ख़ुद हमारे सामने है। मुसलमानों के पास न साइंस और टेक्नोलाजी थी, न हथियार और संसाधन थे, लेकिन मक़सद से लगन और मुहब्बत उन पर ग़ालिब हुई तो फिर वह दुनिया के अन्दर फ़ैलते चले गये और सिर्फ़ 200 साल के अन्दर उन्होंने एक ऐसी तहज़ीब (संस्कृति) की बुनियाद डाल दी जो हज़ार साल तक दुनिया के अन्दर ग़ालिब रही और अब भी ज़िन्दा है। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं ईमान, तक़्वा, सब्र और इस्तिग़फ़ार की कोई भौतिक व्याख्या कर रहा हूँ बल्कि मैंने सिर्फ़ यह कहा है कि जहां ये गायब हैं, चाहे सही बात के लिये हो वह मग़लूब (अधीन) होगा और जहां यह मौजूद है, चाहे ग़लत बात के लिये हो वह ग़ालिब होगा।

उम्मत मुस्लिमा का मामला यह है कि अल्लाह तआला ने उसके लिए इससे अलग एक और क़ानून भी बयान किया है, और वह क़ानून यह है कि मुसलमान क़ौम अल्लाह तआला के साथ एक मुआहदा और एक अहद (प्रतिज्ञा) है। जब तक वह उम्मत इस अहद को पूरा न करेगी, वह दुनिया के अन्दर ग़ालिब न हो सकेगी। अगर हम चाहें कि हम दूसरी क़ौमों की तरह अल्लाह तआला को छोड़कर सिर्फ़ दुनियावी और आर्थिक उद्देश्यों को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बना कर कामयाब हो जायें तो यह मुम्किन नहीं होगा कि हम इस तरह तरक़्क़ी की मन्ज़िलों को हासिल कर लें।

इस पूरी सदी का इतिहास इस हक़ीक़त के ऊपर गवाह है। मैं एक मिसाल से अपनी बात स्पष्ट करूंगा। इस सदी के प्रारम्भ में दो मुल्कों ने इस बात का फ़ैसला किया कि हमारी तरक़्क़ी पश्चिम की तरक़्क़ी में निहित है, एक तुर्की और दूसरा जापान। इन दोनों ने इस सदी के शुरू में अपने सफ़र की शुरूआत की। आज जापान दुनिया की पांच बड़ी ताक़तों में से एक हैं लेकिन तुर्की अभी तक उसी मुक़ाम पर खड़ा है जहां से उसने अपने

सफ़र की शुरूआत की थी। हालांकि मानवीय संसाधनों के लिहाज़ से और उन तरीक़ों की पैरवी के लिहाज़ से जो पश्चिम में तरक़्क़ी के लिये पाये गये हैं, दोनों में कोई फ़र्क़ न था। तुर्की ने क़ानून भी वही इख़्तियार किया, संसाधन भी वही अपनायें, तहज़ीब भी वही इख़्तियार की, यहां तक कि पाठ्यक्रम भी वही इख़्तियार कर लिया लेकिन वह तरक़्क़ी की मंज़िलें तय न कर सका। यह इस बात की स्पष्ट मिसाल है कि मुसलमानों के लिये मुम्किन नहीं है कि वह मात्र भौतिक संसाधनों को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनायें और तरक्की और बुलन्दी के राजमार्ग पर आगे बढ़ें।

सवाल यह है कि हमने पूरे चालीस–पचास साल में क़ौम को क्या दिया आर्थिक तरक़्क़ी का मकसद? हमने योजना बनाई तो आर्थिक तरक़्क़ी के लिये, संसाधन इकट्ठा किये तो उसी के लिये, शिक्षा के मामलों पर ग़ौर किया तो इस लिये कि साइंस और टेक्नोलाजी में किस तरह तरक़्क़ी करेंगे। पिछले तमाम अर्से में यही फ़िक्र, यही सोच और यही शिक्षा कौम को दी जाती रही और यही ज़हर उसकी रग– रग में फैलाया जाता रहा। जब आर्थिक तरक़्की ही मकसद बन गया तो फिर देश की तरक़्क़ी से पहले राज्य की तरक़्क़ी मक़सूद क्यों न हो? और इससे पहले मुहल्ले को प्राथमिकता क्यों न दी जाये, और मुहल्ले से पहले मेरे घर की बारी क्यों न आये? कहते हैं कि सारी बीमारियों की जड़ इस फ़लसफ़े (दर्शन) के अन्दर है क्योंकि रिश्वत लूँगा तो अपने घर की सोचूंगा इसके आगे बढ़ूंगा तो अपने सूबे के बारे सोचूंगा। इसलिये कि दौड़ किस बात की है आर्थिक विकास की। मक़सद क्या है, आर्थिक तरक़्क़ी और व्यक्तिगत स्वार्थ। हमारे ''ख़ुदा'' (मैं यह लफ्ज़ अंग्रेज़ी से लेकर इस्तेमाल कर रहा हूँ, इसमें दूसरे ख़ुदाओं, देवताओं के लिये ख़ुदा का लफ्ज़ इस्तेमाल होता है) हमारे ''देवता'' क्या हैं? सामूहिक क़ौमी आमदनी बस हमारा मेआरे ज़िन्दगी (Standard of Living) बुलन्द होना चाहिये इसके नतीजे में अगर आज

हम इसका रोना रोते हैं कि भ्रष्टाचार और चोर बाज़ारी आम है, लोग ईमानदारी से काम नहीं करते, अपनी ज़िम्मेदारी अदा नहीं करते, शैक्षिक व्यवस्था सही नहीं है, व्यापार घाटे में जा रहा है, तो यह दरअस्ल हमारे आमाल का नतीजा है।

وَمَا كَانَ اللّٰهُ لِيَظْلِمَهُمْ وَلٰكِنْ كَانُوْا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ۔ (العنکبوت ٢٩:٤٠)

अल्लाह उन पर ज़ुल्म करने वाला न था, मगर वह ख़ुद ही अपने ऊपर ज़ुल्म कर रहे थे''

आज जिस तरह मुझे इस बात का यक़ीन है कि दिन के बाद रात आयेगी इसी तरह मुझे इस बात का भी यक़ीन है कि हम कितनी ही कोशिश क्यों न कर लें, कितने ही मन्सूबे क्यों न बना लें और कितनी ही आर्थिक तरक़्क़ी क्यों न कर लें, लेकिन 100 साल बाद भी यह क़ौम इसी मुक़ाम पर खड़ी होगी, जिस तरह तुर्की की आज सत्तर साल बाद उसी मुक़ाम पर खड़ा है। आर्थिक समस्यायें वैसे ही होंगी, ग़रीबी वैसे ही होगी, जिहालत वैसी ही होगी, दौलत की अधिकता उसी तरह होगी और लोग भी उसी तरह परेशान हाल और मुसीबत में होंगे।

ज़रूरत है कि हम अल्लाह तआला के ऊपर ईमान की तजदीद (पुनरावृत्ति) करें। वह बात मैं सिर्फ़ नसीहत के अन्दाज़ में नहीं कह रहा हूँ। हमारे कुल क़ौमी वसायल, मन्सूबे, रेडियो और टेलीविज़न और सारे ज़राये इबलाग (means of communication) इसके लिये वक़्फ़ होने चाहिये कि अल्लाह तआला पर ईमान और यक़ीन मज़बूत हो, उसकी मुहब्बत पैदा हो, इस्तिग़फ़ार और तक़्वा की सिफ़त पैदा हो, हम जिस बात को सही मानें उसको इख़्तियार करने की क़ूव्वत हमारे अन्दर पैदा हो। हम जिस बात को ग़लत कहें उससे बचने की क़ूव्वत हमारे अन्दर हो और ग़लती करें तो बिला झिझक उसका एतेराफ़ करें और उसकी सुधार की

कोशिश करें। जब यह सब कुछ होगा तो अल्लाह तआला का वादा है कि वह ज़रूर हमें अज़मत व सरबुलन्दी और तरक्की अता फ़रमायेगा :

وَلَا تَهِنُوْا وَلَا تَحْزَنُوْا وَاَنْتُمُ الْاَعْلَوْنَ اِنْ كُنْتُمْ مُؤْمِنِيْنَ ۔ (اٰل عمران ۳:۱۳۹)

''मायूस न हो, ग़म न करो, तुम ही ग़ालिब रहोगे अगर तुम मोमिन हो''

★ ★ ★